शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री नैतिकता

डॉ. अनिल कुमार जयंत
सहायक प्राध्यापक
आई. एम. एस. कॉलेज
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मानव अधिकारों का विस्तृत अर्थ है जियो और जीने दो। जिस आजादी की जरूरत हमें खुद है ठीक वैसी ही जरूरत दूसरों को भी होती है और खासकर उस महिला को जिसने पूरी जिंदगी अपने पति और बच्चों के प्रति अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। पूरी जिन्दगी कर्त्तव्य निभाने में लगा दी और अंत में यह भी भूल गई कि आखिर उसके कुछ अधिकार थे भी या नहीं। समय के बदलाव के साथ आज स्त्री को परिवार ने कमाने की पूरी आजादी है। लेकिन उसकी कमाई पर अधिकार परिवार वालों का होता है। वह महिला अपने द्वारा कमाई धन राशि को खर्च करने की हिम्मत नहीं रखती। अगर भूल से भी वह उस धन को खर्च कर दे तो घर में लड़ाई हो जाती हैं। इसके बावजूद वह अपने जीने की राह से भटकती नहीं है। वह नैतिक मूल्यों की रक्षा के प्रति निरंतर सजग रहती है। प्रस्तुत शोध पत्र में पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री नैतिकता पर विचार किया गया है।

भूमिका

समाज की प्रगति का पैमाना उस समाज में स्त्री की स्थिति से लगाया जाता है। प्राचीनकाल में समाज में महिला की स्थिति काफी सुदृढ़ थी। उसे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। समाज में उसके निर्णय का समान महत्त्व था। मध्यकाल में स्त्री को अनेक प्रकार के बंधनों में जकड़ दिया गया। उसे शिक्षा से वंचित कर दिया गया। महिला की चहारदीवारी चौके-चूल्हे तक सिमट गयी। पितृसत्तात्मक समाज में सती की दशा शोचनीय हो गयी। समाज में स्त्री की स्थिति एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसके मूल में समाज के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति उसके स्त्रीत्व की निर्मित और उसके क्रमशः विकास का एक वृहत् विमर्श भीसंपृक्त है। यह विमर्श स्त्री और स्त्रीत्व के अब तक के इतिहास का एक कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करता है। जिसमें सम्मिलित उसके जीवन की तमाम खुली अनखुली सच्चाईयाँ, तहो में फड़फड़ाता उसका सुदीर्घ संघर्ष, उसके मूक और प्रखर स्वर का क्रमशः उतार-चढ़ाव एवं वह पूर्ण सुनियोजित व्यवस्था जिसने उसके स्त्रीत्व के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभाई। भारत का संविधान स्त्री और पुरूष दोनों को समान अधिकार प्रदान करता है, लेकिन आज इस बात को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि विकास और उन्नति के मामले में महिलाएँ पुरूषों से पीछे हैं। आज भी महिलाएँ समाज के कमजोर और पिछड़े वर्ग में गिनी जाती हैं। महिलाओं को उनका हक-अधिकार दिलाने के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किए, परन्तु विकास नहीं हो पाया। आज भी यह विडंबना है कि जब कोई महिला अपना अधिकार मांगती है तो पुरुष को अपना अहं आहत होते नजर आता है। पुरुष अपने

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अधिकार को स्त्री पर पूर्णतः हावी रखता है। आज जो लड़ाई है वह अधिकारों की लड़ाई है। स्त्री को अपने अधिकारों के बारे में विस्तार से और मानसिक स्तर से सोचना चाहिए एवं अपनी सोच का दायरा भी विस्तृत करना चाहिए। आज स्त्री जात के अधिकारों की संसार में शांति व सुरक्षा जैसे मुद्दे पर डिबेट करने की आवश्यकता है।

पितृसत्ता एक सामाजिक विमर्श

पितृसत्तात्मक समाज को जानने से पहले हमें पितृसत्तात्मक को समझना होगा। पितृसत्तात्मक का अर्थ होता है पिता या घर के किसी बड़े बुर्जुग की घर के लोगों और घर पर सत्ता होना। इसे ही पुरुष प्रधान समाज भी कहा जाता है। सही मायने से बात की जाए तो पितृसत्तात्मक केवल और केवल महिलाओं के लिए ही है। यह सिर्फ कहने भर को है कि पितृसत्ता के दायरे में पूरे परिवार को रखा जाता है। पितृसत्तात्मक में पुरुष महिलाओं को दबाते हैं और निचले पायदान पर रखते हैं। मैक्सवेबर के अनुसार पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं एवं कम आयु के पुरुषों पर बड़ी उम्र के पुरुष का प्रभाव होता है, जो घर की व्यवस्था का मुखिया होता था। अरस्तु ने कहा है कि औरत केवल पदार्थ है, जबकि पुरुष गति औरत जड़ है जबकि पुरुष उसमें जीवंतता का संचार करता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की इज्जत एक ऐसी सरंचना है, जिसमें उसका परंपरागत अनुकूलन सूत्रबद्ध है। इसलिए जब इस संरचना का विखंडन होता है तो वे सभी नियम-विनियम सामने आ जाते हैं, जिन्हें सामाजिक व्यवस्था के नाम पर स्त्रियोचित और पुरुषोचित व्यवहार के साँचे में ढालकर संस्कृति के नाम पर परिभाषित किया गया था। यह सांस्कृतिक विखंडन की प्रक्रिया वस्तुतः स्त्री सुक्ति की प्रक्रिया है। जिसमें स्त्री धर्म समाज और राजनीति के अंध पृष्ठों से गुजरती हुई अपने सत्य का स्वयं शोधन करती है। यही वह स्त्रीत्व के पुरुषवादी साँचे से भी रफ़बरफ़ होती हैं। उसे अपने प्रतिकूल जान धवस्त करती हैं। 'समाज में बदलाव आया है पर यह ऊपरी परिवर्तन ज़्यादा है। स्त्री को लेकर समाज की मानसिकता मे कोई खास तब्दीली नहीं आई है। ऐसा लगता है कि बाज़ार में स्त्रियों को स्वतन्त्रता दिलाने में अहम भूमिका निभाई है, पर सच्चाई कुछ और है। वह अपने उत्पाद बेचने के लिए लड़कियों को ऑब्जेक्ट की तरह प्रस्तुत करता है। विज्ञापनों में महिलाओं की क्या छवि पेश की जाती है, हम देख रहें है। वहाँ उन्हें लेकर ऐसे कमेंट कसे जाते हैं जो पुरूषवादी मानसिकता को और अधिक मजबूत करते है।"[1]

पितृसत्तात्मक समाज में यह हालात है कि पुरुष द्वारा किसी स्त्री पर किया गया बलात्कार उस स्त्री के लिए ही शर्म और मरने वाली बात होती है। अभी तक यह पढ़ने या सुनने में नहीं आया है कि किसी पिता ने अपने बलात्कारी बेटे की हत्या की हो। पुत्री की हत्या तो अनेक बार की जा चुकी है। स्त्री सदियों से यह सब चुपचाप सहती आ रही है। शुरू से ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था लिंग भेद पर आधारित रही है। पितृसत्तात्मक समाज को ठीक प्रकार से समझने के लिए पितृसत्तात्मक समाज को भी समझना आवश्यक हो जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'खुली खिड़कियां' में लिखा है, "पितृसत्तात्मक समाज में लड़की को अपने पति के घर जाना पड़ता है, अतः लड़की को पराया धन समझा जाता है, ऐसे में यह माना जाता है कि उसके लालन-पालन और शिक्षा पर व्यय करना व्यर्थ है, क्योंकि वह तो किसी दूसरे घर जाएगी। साथ ही दहेज प्रथा

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

ने भी लड़कियों को अवांछित बना दिया है, उसका उचित लालन-पालन भी नहीं किया जाता तथा स्त्री की देखरेख की जिम्मेदारी सौंपी गई, लेकिन कहा गया कि जैसे वह गौ, घोड़ी, ऊंटनी, भेड-बकरी और दासी की देखभाल करता है वैसा ही व्यवहार करें।"[2]

पितृसत्तात्मक समाज और महिलाएं

भारतीय पुरुष प्रधान समाज में प्रत्येक स्तर पर नारी शोषण, अत्याचार सर्वहारा वर्ग के समान होता रहा है। नारी को पढ़ने-लिखने, स्वतंत्र घूमने, मन की इच्छा अनुसार कार्य करने आदि की आजादी नहीं थी। जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुष अपने अंकुश से अपनी मनमर्जी से चलाता था और स्त्री चुप रहकर उसके आदेश को पूरी लगन से पूरा करती थी। स्त्री उस स्थिति में केवल भोग्य वस्तु या कहें केवल बच्चे पैदा करने वाली मशीन की भांति जान पड़ती थी। सिमोन द बोउवार ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पुरजोर खण्डन किया। उन्होंने किसी नारीवादी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी लिखा उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी दोनों ही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष ने पूरी सता को हस्तगत कर दिया। परिवार की आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक विषयों, यौन संबंधों आदि विषयों पर वह स्त्री पर हावी रहा। स्त्री को उसने स्त्रीत्व की ऐसी परिभाषा सौंपी जिसमें उसे मात्र रूढ़ियों की बेड़ियों में बांध कर रख दिया, यहां तक कि उसे अस्मिताहीन बना दिया।

स्त्री हाशिए की वस्तु हो गई। सभी निर्णय पुरुष के हाथ में चले गए। स्त्री देह पर वर्चस्व का अधिकार भी पुरुष के अधीन रहा। इस संदर्भ में डॉ. गोपा जोशी का यह वक्तव्य देखिए "संविधान में पितृसत्तात्मक को स्त्री समानता की राह में रोड़ा न मानकर एक नैसर्गिक संस्था के रूप में लिया गया है। यह पितृसत्तात्मक विचारधारा भारत में ही नहीं विश्व की संवैधानिक व्यवस्थाओं में सर्वत्र विद्यमान है। महिलावादी विचारधारा के विकास के लिए आवश्यक है कि स्त्री-पुरुष समानता के नारे में समाहित पितृसत्तात्मक विचारधारा को समझा और नकारा जाए।"[3] हमारे समाज में पुरुषवाद इतना हावी है कि आज महिला चाहे कितनी भी तरक्की कर ले, कितना भी आसमान भी छू ले लेकिन चाह कर भी पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती। वहीं दूसरी ओर पुरुषों के मामले में यह सोच उलट हो जाती है। पुरुष चाहे कितना भी बेहुदा असभ्य, अनपढ़ हो वह हमेशा महिलाओं से ऊपरी पायदान पर रहता है। ऐसे पुरुषवादी समाज द्वारा यह कहा जाता है कि महिला का जीवन बिना पुरुष के अधूरा है। पितृसत्तात्मक समाज में केवल स्त्री की नैतिकता की ही बात की जाती है।

पुरुषवादी विचारधारा : नैतिकता के संदर्भ में

स्त्री की नैतिक जिम्मेदारी पर ही सवाल उठाए जाते हैं। पुरुषवादी समाज में महिलाओं को केवल दासी बनाकर रखना, उनका शोषण करना, उन पर अत्याचार करना, पुरुषवादी सोच के अनुसार महिलाओं की नैतिकता को दर्शाती है। हमारे समाज में स्त्री नैतिकता की क्या परिभाषा मानी जाती है ? शायद यह कि स्त्री शांत रहे, सहमी रहे, घर का काम करे, अपनी इच्छा व्यक्त न करे, मार सहती रहे और आवाज न उठाए। अगर यही सब स्त्री नैतिकता में आते हैं तो यह स्त्री नैतिकता नहीं बंदी प्रथा हुई। जिसमें स्त्री अधिकारों का शोषण होता है और आवाज उठाने पर मौत की सजा का प्रावधान है। "स्त्री की मान मर्यादा के प्रति अति संवेदनशील समाज पूंजीवादी

उपभोक्ता संस्कृति द्वारा स्त्री को प्रयोज्य बनाने से कतई नहीं हिचकिचा रहा, लेकिन यही कमाऊ स्त्री जब अपने समान अधिकारों और लोकतांत्रिक वैज्ञानिक नजरियों की अनिवार्यता पर जिरह करती है या बदलाव की क्रांतिकारी मुहिम छेड़ने लगती है तो उसके रास्ते में तमाम बाधाएं खड़ी की जाती हैं। बार-बार भारतीय संस्कृति, परंपरा, धर्म, नैतिकता और सनातन मूल्यों की दुहाई देकर उसके बढ़ते कदमों को रोका जाता है।"[4] पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष ने पूरी सत्ता को हस्तगत कर दिया। परिवार की आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक विषयों, यौन संबंधों आदि विषयों पर वह स्त्री पर हावी रहा। स्त्री को उसने स्त्रीत्व की ऐसी परिभाषा सौंपी, जिसमें उसे मात्र रुढियों की चौहदी में बाँध कर रख दिया, यहाँ तक कि उसे अस्मिताहीन बना दिया। स्त्री हाशिए की वस्तु हो गई। सभी निर्णय पुरुष के हाथ में होते हैं। यहाँ तक कि स्त्री के देह के प्रति सामाजिक व्यवहार को निर्धारित करना भी। पितृसत्ता स्त्री को प्रताड़ित करने या उसकी मार-पिटाई करने के साथ-साथ उसका नाम ही छीनने या कहें हरण करने तक हावी है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री नैतिकता की बात करना बेमानी सा लगता है। शुरू से ही पितृसत्तात्मक समाज स्त्री अधिकारों का हनन करता आया है। समाज में स्त्री की दशा को बिगाड़ने का पूरा श्रेय इसी पितृसत्तात्मक को जाता है। स्त्री को दबाकर रखना, उसके अधिकारों का हनन कर उसकी आवाज को दबाकर उसके अस्तित्व को मिटाने का पूरा कार्य पितृसत्तात्मक समाज द्वारा किया गया। जहां एक और पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं को बेचारी बताया गया है, वहीं दूसरी और स्त्री नैतिकता में स्त्री अस्मिता के बिन्दु पर विचार किया गया है। जब हम स्त्री नैतिकता की बात करते हैं तो यहां पुरुष नैतिकता की बात करना भी आवश्यक हो जाता है। समाज में हालात ऐसे बने हुए हैं कि महिलाओं पर ही अत्याचार हो रहे हैं और उन्हीं से उनके नैतिक अधिकारों पर चुप रहने की सलाह दी जाती है। पुरुषवादी सोच इतनी भ्रष्ट हो चुकी है कि महिलाओं के महिला होने के सबूत तलाशने में जुट जाते हैं। समाज में शोषित महिला को ही सलाह दी जाती है कि वह अपनी नैतिक जिम्मेदारी को समझे और समय पर घर आए न कि देर रात तक बाहर रहे। यहां भी पुरुष की नैतिकता दूस्दूर तक नजर नहीं आती। समाज में नैतिकता का ताना-बाना केवल महिलाओं को ही लेकर चलना जायज नहीं है। समाज सभी जीवों और बुद्धिजीवों से मिलकर बना है। समाज में सभी को समान अधिकार दिए हैं तो फिर न जाने क्यों पुरुष समाज अपने को ही सर्वोपरि मानकर चलता है।

आधुनिकता और पितृसतात्मक समाज

आज इस नवआधुनिक समय में भी जहां महिलाएं देश को चलाने में मुख्य भूमिका निभा रही हैं और देश के प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत हैं वहीं दूसरी ओर रक्षा बंधन, भाई दूज, करवा चौथ, अहोई, सोलह सोमवार के व्रतों को भी अपने साथ-साथ लेकर चल रही है। यह सभी त्यौहार महिलाओं के लिए हैं। इसमें पुरुष की लम्बी आयु की कामना की जाती है। किसी एक स्थान या राज्य ही नहीं पूरे भारत में स्त्री का कमोवेश यही हाल नजर आता है। उन्नीसवीं सदी में सभी समाज सुधारकों ने नारी को समाज में सम्मानित दर्जा दिलाने के लिए अथक प्रयास किया। इस प्रयास का ही नतीजा है कि सती जैसी घृणित प्रथा बंद हुई।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

"इक्कीसवीं सदी में स्त्री और भी देह हुई है। यूं कहें कि सिर्फ देह ही रह गई है, जिसे खरीदा-बेचा जा सकता है। उपभोग व नष्ट किया जा सकता है।"[5] समाज में नारी की छवि में जिस तीव्र गति से परिवर्तन हुआ उतनी ही तेज गति से उसका विरोध भी हुआ। इसी कारण नारी ने पुरूषों के साथ चलते हुए शिक्षा के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में तथा अर्थसचंय के अन्य क्षेत्रों में उन्नति की। सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्रें में होते निरंतर परिवर्तनों ने नारी की व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियों में एक अलग क्रांति ला दी है। आधुनिक नारी के लिए क्षण का महत्व बढ़ गया है। वह भूत और भविष्य को छोड़ कर वर्तमान में जीने लगी है।

निष्कर्ष

उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों ने नारी स्वातंत्र्य के सवाल को उभार कर उसे शिक्षित एवं जागृत किया। पश्चिम में उठे स्त्री मुक्ति आंदोलनों से भारत की स्त्रियाँ सीधे तौर पर प्रभावित नही हुई। लेकिन जाने-अनजाने स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष का दायित्व स्त्री संगठनों पर सौंप कर पुरूष समाज पीछे हट गया। आज हमें लगता है कि स्त्री आजाद और आत्मनिर्भर हो गयी है। वह अपने दिमाग एवं अपने विवेक से सब कर सकती है। ऊंचाई पर पहुँची महिलाओं को देखकर ऐसा लगता है जैसे समाज आगे बढ़ रहा है और यह सत्य भी है। लेकिन जब हम इन्हीं स्त्रियों को कम कपड़े पहने हुए किसी फिल्म या फैशन शो में देखते हैं तो पता चलता है कि इसकी पीछे भी पुरुषवादी विचार काम कर रहा है। पूंजीवाद और बाज़ारवाद ने सामाजिक बंधनों से मुक्त हुई स्त्री को के नए प्रकार के बंधन में जकड़ लिया है। उससे मुक्ति के लिए महिला को एक बार फिर नए सिरे से प्रयास करना होंगी।

सन्दर्भ ग्रंथ

1 जनमाध्यम और मासकल्चर, जगदीश्वर चतुर्वेदी, सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण,1996, पृष्ठ 160

2 खुली खिड़कियां, मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2009, पृष्ठ 19

3 भारत में स्त्री असमानता, डॉ. गोपा जोशी, पृष्ठ 177

4 आजाद औरत कितनी आजाद, शैलेन्द्र सागरध्रजनी गुप्त, सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2008, पृष्ठ 105

5 स्त्री और सेंसेक्स, रंजना जायसवाल, सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ 34